National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.multidisciplinaryjournal.org
ISSN: 2455-9040
Received: 09-12-2021, Accepted: 25-12-2021, Published: 10-01-2022
Volume 7, Issue 1, 2022, Page No. 67-72

पर्यावरण संरक्षण में गैर–सरकारी संगठनों का योगदान: सैद्धान्तिक दृष्टिकोण

डॉ. प्रकाश वीर दहिया
सह–आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, सत्यवती महाविद्यालय (सांध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांष
पर्यावरण प्रदूषण एक चिंता का विषय है जिसके लिए गैर–सरकारी संगठनों और सरकार को अभी बहुत कुछ किया जाना आवश्यक है। सरकार को पर्यावरण के प्रति जागरुक तथा विकास–प्रक्रिया के दुष्परिणामों के लिए उत्तरदायी बनाने के कार्य में सफलता जनता की भागीदारी के बिना असंभव है। सरकार भी यह मान कर कार्य कर रही है कि पर्यावरण प्रबंध हेतु विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण संबंधी शिक्षा, प्रशिक्षण और ज्ञान होना पूर्व शर्त है। इस दिशा में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा सेमिनार, कार्यशाला, विचार गोष्ठी, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, शिवरों, आन्दोलनों और अभियानों के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण और प्रबंधन संबंधी चेतना जागृत करने के प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे हैं। सरकारी प्रयासों की अपनी सीमाएँ, कमजोरियाँ और राजनीति होती है। अतः सरकार जो कार्य नहीं कर पा रही वह कार्य गैर–सरकारी संगठन कर रहे हैं।

मूल शब्दः पर्यावरण, गैर–सरकारी संगठन, सरकार, प्रदूषण, भारत, वन, संरक्षण

प्रस्तावना
पर्यावरण उन सब परिस्थितियों और प्रभावों का कुल योग है जो जीवधरियों के जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं। सरल शब्दों में हम कह सकते है कि जीवित प्राणियों के अस्तित्व, जीवन और पुनरुत्पादन को प्रभावित करने वाले सभी तत्त्व और कारक पर्यावरण कहलाते हैं। प्रकृति एक निश्चित नियम से कार्य करती है। यदि उसके किसी अवयव या क्रिया के साथ ज्यादती की जाए तो उसका सन्तुलन बिगड़ जाता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग से बढ़ाई गई मानव की उत्पादन क्षमता ने पर्यावरण के प्रदूषण का संकट उत्पन्न किया हैं।[1] जब हम पर्यावरण के प्रदूषण की बात कहते हैं तो हमारा तात्पर्य है कि कोई प्राकृतिक अथवा मानवीय संसाधन मानवीय अथवा लाभकारी प्रयोग के लिए मौलिक, रासायनिक अथवा जीव वैज्ञानिक कारणों से अनुपयुक्त हो गया है।
विश्व में औद्योगिकरण ओर तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय प्रदूषण इतना बढ़ चुका है कि प्रकृति का संतुलन बिगड़ता जा रहा हैं। जहाँ भारत जैसे विकासशील देशों में जनसंख्या अतिरेक और निधर्नता पर्यावरणीय प्रदूषण समस्या को विकट बनाते हैं। [2] वहीं विकसित देशों में समस्या की विकरालता विकास की प्रक्रिया का ही दुष्परिणाम हैं। औद्योगिकरण से उत्पन्न सपन्नता और भौतिक सुखों की चाह ने प्राकृतिक संसाधनों पर भार बढ़ाया [3] तथा आर्युविज्ञान की उन्नति के फलस्वरूप मृत्यु दर में कमी ने जनसंख्या के साथ प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ने वाले भार में भी वृद्धि की। भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या ओर विभिन्न विकास योजनाओं ने पर्यावरण का संकट उत्पन्न किया है।
सरकार को पर्यावरण के प्रति जागरुक तथा विकास–प्रक्रिया के दुष्परिणामों के लिए उत्तरदायी बनाने के कार्य में सफलता जनता की भागीदारी के बिना असंभव है। जनता की भागीदारी के लिए उनके पास पर्यावरण संबंधी सूचनाओं का होना अनिवार्य है। यद्यपि सरकार भी यह मान कर कार्य कर रही है कि पर्यावरण प्रबंध् हेतु विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण संबंधी शिक्षा, प्रशिक्षण और ज्ञान होना पूर्व शर्त है। इस दिशा में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा सेमिनार, कार्यशाला, विचार गोष्ठी, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, शिवरों, बहुप्रचार अभियानों के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा पर बल देकर पर्यावरण संबंधी चेतना जागृत करने के प्रयास 'राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना' अभियान के अन्तर्गत किए जा रहे हैं। तथापि सरकारी प्रयासों की अपनी सीमाएँ, कमजोरियाँ और राजनीति होती है। अतः सरकार जो कार्य नहीं कर पा रही वह कार्य गैर सरकारी संगठन कर हैं। [4] वे लोगों को समझा रहे हैं कि पर्यावरण कैसे बिगाड़ा जाता है, कौन बिगाड़ सकता है। हमारे यहाँ पर्यावरण से जुड़े विषयों पर जितने गैर–सरकारी संगठन काम कर रहे हैं उतने हमारे जैसे अन्य विकासशील देशों में कहीं भी नहीं है। यह प्रशंसनीय है कि यह संख्या पश्चिमी देशों में ऐसे संगठनों की संख्या के लगभग बराबर ही हैं। [5] यों इन्हें बिल्कुल पश्चिम अर्थों में पर्यावरणीय कहना कठिन होगा क्योंकि इसमें अधिकांश संगठनों ने अब पर्यावरणीय संबंधी विषयों के अतिरिक्त गरीबी, सामाजिक अन्याय, असमानता, नागरिक स्वतंत्रता, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य और उपर्युक्त तकनीकी विषयों को भी उठाना प्रारम्भ कर दिया है। जैसे 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद' जिसकी राज्य भर में 250 इकाईयाँ और कुल 4,000 से अधिक सदस्य हैं, उत्तर प्रदेश में हिमालय क्षेत्रा में, 'चिपको आंदोलन' की मातृ संस्था 'दशौली ग्राम स्वराज्यमंडल', उत्तराखंड में सुन्दर लाल बहुगुणा की पदयात्राएँ और 'उत्तराखंड संघर्ष वाहिनी', मध्यप्रदेश में 'एकलव्य', 'किशोर भारती' ओर शहडोल ग्रुप अहमदाबाद में विकसित, दिल्ली में 'अंकुर', 'कल्पवृक्ष', बंबई की 'सोसाइटी पफार क्लीन एनवायरमेंट','नेचुरल 'हिस्ट्री सोसाइटी', एनवायरमेंटल' सर्विस ग्रुप इत्यादि। [6]
इन संगठनों की सक्रियता को देखकर पर्यावरण विभाग ने कई सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर पर्यावरण के संवधर्न की कुछ सफल तकनीकों, माध्यमों और साधनों को लोगों के समक्ष रखने का प्रयास किया है।

पर्यावरण संबंधी जानकारियों को एकत्रित करने, उनका विश्लेषण करने ओर योजना बनाने वालों, नियम निर्माताओं और शोध् करने वालों हेतु उन्हें उपलब्ध् कराने के लिए पर्यावरण सूचना व्यवस्था के अन्तर्गत कम्प्यूटर की सहायता से सूचना केद्रों का एक बड़ा ढांचा खड़ा किया जा रहा है जो देश के पर्यावरणीय स्रोतों की एक समग्र सूची बनाने का कार्य करेगा। इस कार्य में भारतीय सर्वेक्षण, भारत का वनस्पति व जीव वैज्ञानिक सर्वेक्षण, राष्ट्रीय रिपोर्ट सेंसिग एजेंसी आदि संस्थाएं भी कार्य कर रही हैं।

भारत में पर्यावरण के बढ़ते खतरे

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण जीवनशैली में दूरगामी परिवर्तन हुए, परिणामतः पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या सामने आई। पर्यावरण पर 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' की 1988 की रिपोर्ट के अनुसार ''देश की लगभग 8 लाख हेक्टेयर जमीन हर साल बिहड़ बनती जा रही है। जिस प्रकार से बीहड़ को रोकने का काम किया जा रहा है, उस प्रकार से कार्यक्रम पूरा करने में 150 वर्ष लगेंगे और तब तक ये बीहड़ दुगने हो जांएगे। सन् 1987 में देश के करीब दो–तिहाई हिस्से पर अकाल की गहरी छाया रही। प्रकृति की निर्भरता से अपने को मुक्त मानने का गर्व करने वाले पंजाब और हरियाणा के हिस्से भी इसके चपेट में आए। [7]

आधुनिक तकनीक ने मनुष्य को खानिज द्रव्यों को खोद कर निकालने का प्रचंड शक्ति दी है, परन्तु साथ ही जीवन के लिए खतरा भी बढ़ा दिया है। उदाहरणार्थ इंडियन इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट बंगलूर के जे० बदोपाध्याय के द्वारा तैयार एक रिपोर्ट के अनुसार ''खदानों का सबसे बुरा प्रभाव यहाँ के जल संसाधनों पर तथा प्राकृतिक वातावरण पर हुआ है। [8] यहीं पर पर्यावरण विभाग द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट में बताया गया है कि पिछले दो दशकों में बालदी नदी के जल ग्रहण क्षेत्र के खेतों की पैदावार 28 प्रतिशत तक गिरी है और इसी क्षेत्र में 18 गाँवों के जल संसाधनों में 50 प्रतिशत की कमी आई है। पर्यावरण प्रदूषण विभिन्न प्रकार से होता है जिसका विवरण इस प्रकार है–

जल प्रदूषणः– जनसंख्या वृद्धि, औघोगीकरण और आधुनिकीकरण ने हमारे जल–स्त्रोतों को प्रदूषित तो किया ही है,जल का संकट भी उत्पन्न कर दिया है। यघपि भारत जल संपदा के विषय में कुछ संपन्नतम राष्ट्रों में से एक है,फिर भी जल का संकट निरंतर बढ़ता जा रहा है। सन् 1970 से हर वर्ष करीब एक लाख 70 हजार ट्यूबवेल लगते जाने से अनेक क्षेत्रों में जल स्तर घटता जा रहा है। [9] जल प्रबन्ध् की स्थिति यह है कि आज तक देश की कुल जल सम्पदा का एक विस्तृत सर्वेक्षण भी नहीं हो सका है।

प्रदूषित जल मनुष्यों को रोगग्रस्त करता है, समुद्री जीवों व वनस्पतियों को नष्ट करता है और समुद्र व भूमि के पर्यावरण–संतुलन को बिगाड़ता है। 1988 के गाँधी शांति प्रतिष्ठान के अध्ययन के अनुसार देश में कुछ उपलब्ध् पानी का 70 प्रतिशत भाग प्रदूषित है, गंदे पानी के कारण फैलने वाली बीमारियों से लगभग 7 करोड़ 30 लाख कार्य दिवस नष्ट हो रहे हैं। सन् 1974 में बने केन्द्रीय जल प्रदूषण नियंत्रण के अन्तर्गत 1981 तक केवल 100 विषय सामने पाए और बस कुछ मुट्ठी भर अपराधियों को ही सजा दी गई। परमाणु परीक्षण से जल में मिलने वाली नाभिकीय कण मनुष्य और पर्यावरण दोनों के लिए अत्यंत घातक है। औघोगिक इकाइयों द्वारा छोड़ी गई सल्फर डायआक्साइड,कार्बन मोनोआक्साइड और हाइड्रोल्पफाइड जैसी गैसों से फेफड़ों, आँतों और त्वचा की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ता है और मत्स्यपालन उघोग भी बुरी तरह प्रभावित हुए हैं।

वायु प्रदूषणः–वायु प्रदूषण एक ऐसी स्थिति है जिसमें बाह्य वातावरण में मनुष्य और पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले तत्त्व सघन रुप से एकत्रित हो जाते हैं। एक राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार,"हमारे देश के वायुमंडल में प्रतिवर्ष 10 लाख टन पारा डाला जा रहा है इसमें से 166 टन पारा केवल कास्टिक सोडा पैदा करने वाले कारखानों के द्वारा वायुमंडल में छोड़ा जा रहा है।'[10]' वैज्ञानिकों के अनुसार एक मोटर गाड़ी एक मिनट में इतनी आक्सीजन खर्च करती है जितनी 1135 व्यक्ति सांस लेने के लिए उपयोग में लाते हैं। 1984 में 'भोपाल गैस कांड' देश के लिए काफी घातक सिद्ध हुआ [11] जिसमें कृषि की कीटनाशक दवाओं के निर्माण अमरीकी कम्पनी 'यूनियन कार्बाइड' की भूल से मैथिल आइसो साइनाइट गैस वायुमंडल में घुल गई, परिणामस्वरुप हजारों लोग और जानवर मौत के मुँह में चले गये।

ध्वनि प्रदूषणः– ध्वनि का आधिक्य या शोर पर्यावरण को सूक्ष्म तरीके से प्रदूषित करता है। इस प्रदूषण को देखा नहीं जा सकता केवल महसूस किया जा सकता है। आधुनिक युग में जिस गति से कारखानों व वाहनों की संख्या में दिन–प्रतिदिन वृद्धि हुई है, उससे यंत्रों का शोर व यातायात का कोलाहल बढ़ा है। वृक्षों की कमी तथा ध्वनि विस्तारक यंत्रों के अधिकाधिक प्रयोग ने ध्वनि प्रदूषण की समस्या को गम्भीर स्वरुप प्रदान किया है। जनवरी 1981 में आयोजित 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के वार्षिक सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए उसके अध्यक्ष प्रो० एस०के शर्मा ने बताया कि भारत में शोर रोकने का कोई उपाय नहीं किया गया है। इसी कारण यहां के शहर पश्चिमी शहरों की अपेक्षा शोरगुल वाले माने जाते हैं। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली में विश्व में सबसे अधिक शोर होता है। 1970 में इन शहरों में शोर की औसत मात्रा 60 डेसिमल थी, [12] जबकि स्वास्थय विशेषजों के अनुसार 'यदि 60 डेसिमल तक स्थायी शोर होता रहे तो उससे स्थायी बहरापन भी हो सकता हैं।' एक स्वयंसेवी संस्था ने बम्बई में सर्वेक्षण के दौरान पाया कि 76 प्रतिशत लोगों को शिकायत है कि कोलाहल के कारण उनका ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता, 69 प्रतिशत लोग अशांत नींद सोते हैं और 65 प्रतिशत लोग हमेशा बैचेन रहते हैं।

परमाणु विखंडन या नाभिकीय प्रदूषणः– परमाणु उर्जा मानव द्वारा आविष्कृत सर्वाधिक शक्तिशाली उर्जा का स्त्रोत है। जहां विकास कार्यों में इसका प्रयोग अत्यंत लाभकारी हो सकता है वहीं विनाश हेतु इसका प्रयोग अत्यंत भयावह सिद्ध हो

सकता है। परमाणु उर्जा से चलने वाले कारखानों में छोटी सी असावधनी भी बड़ी दुर्घाटना का कारण बन सकती है जैसे रुस के चेरनोबिल अणु बिजलीघर में विस्फोट कांड और मार्च 1963 में भारत में नरौरा संयत्र में अग्निकांड [13]। परमाणु परीक्षण के लिए समुद्रों या रेगिस्तानों को चुना जाता है,जहां इन परीक्षणों से मछलियाँ व पेड़–पौधें में रेडियोर्धिमता पहुँच जाती है जो खाघ–श्रृंखला के माध्यम से अन्य जीव–जन्तुओं व मानवों तक पहुँचते रहते हैं [14]। इस प्रकार हानिकारक प्रभावों की भी एक श्रृंखला बन जाती है जो पर्यावरण के संतुलन और स्वास्थ्य को पूरी तरह से विनष्ट करने की क्षमता रखती है।

वन और पर्यावरणः– वन ऐसे संसाधन हैं जो नवीनीकरण के योग्य हैं और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनके हास और विनाश के कारण व्यापक भू–कटाव अनियमित वर्षा और अत्यधिक बाढ़ आ रही है। इसके अतिरिक्त ईधन लकड़ी का अभाव उत्पन्न हो रहा है तथा भूमि उत्पादकता में कमी आ रही ह [15]। इन्हे ठीक ही देश का पर्यावरण बैंक कहा गया है क्योंकि पर्यावरण की गुणवत्ता सुधारने में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

1981 में विश्व खाद्य संगठन की उष्ण कटिबंधीय एशिया के वन संसाधनों संबधी एक रिपोर्ट ने एशियाई क्षेत्रा में गंभीर रुप से घटती जा रही वन संपदा पर चेतावनी दी है। रिपोर्ट के अनुसार 'वनों की बहुमूल्य सेवाएँ और भूमिकाएँ हैं,जैसे वन्य प्राणियों को प्रश्रय देना, भूमि और जल का संरक्षण करना, मौसम का चक्र कायम रखना इत्यादि, इन्हें निकट भविष्य में फिर से पहले जैसी स्थिति में लाने के कोई लक्ष्य प्रतीत नहीं हो रहे हैं [17]। इसका कारण वन विनाश की वार्षिक दर है जो लगभग डेढ़ लाख हेक्टेयर रही है। वन–विभाग द्वारा प्रसारित आँकड़े के अनुसार सन् 1951 और 1972 के बीच बांधें, नए खेतों, सड़कों और उघोगों के कारण देश की 34 लाख हेक्टेयर वन खोना पड़ा[18] परन्तु उपग्रहों के ताजा चित्र बताते हैं कि हर साल 13 लाख हेक्टेयर वन नष्ट हो रहे हैं [19] जो वन विभाग द्वारा प्रसारित वार्षिक दर से आठ गुना अधिक है। देश में लगभग 400 [20] ऐसे कानून हैं जिनका पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रयोग किया जा सकता हैं। इनमें प्राचीनतम 1853 का 'शोर एक्ट'; बम्बई व कोलाबाद्ध है। परन्तु विशेष तौर पर पर्यावरण संरक्षण के उछेश्य से विधि निर्माण की गति धीमी रही है। फिर भी, कीटनाशक अधिनियम 1968, वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम 1972, जल–प्रदूषण: निवारण और नियंत्रण अधिनियम 1981 द्वारा पर्यावरण संरक्षण की सर्वोच्च उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार को सोंपा गया है। साथ ही जल अधिनियम 1974 तथा वायु अधिनियम 1981 को अधिक कठोर बनाया गया है।

परन्तु अधिकांश कानून प्रदूषण की रोकथाम के लिए अपर्याप्त है [21]। अनेक विषयों में पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने को अपराध् मानने में अदालतें संकोच करती हैं। अतः अपराध् का उद्वेश्य या उनकी जानकारी का प्रमाण न मिलने पर अदालतों न तो दंड ही दिया या थोड़ा–बहुत जुर्माना भर किया, ये जुर्माने इतने कम होते हैं उघोगपति प्रदूषण नियंत्राण के महँगे उपकरण मँगाने की अपेक्षा जुर्माना देते रहना ही बेहतर समझते हैं। लगभग यही स्थिति वायु और वन संरक्षण कानून की है। इस प्रकार के दृष्टिकोण के दूरगामी परिणाम अत्यन्त खतरनाक साबित हो सकते हैं, भोपाल गैस त्रासदी इसका एक ज्वलंत उदाहरण हैं।

पर्यावरण संरक्षणः गैर–सरकारी संगठनों का योगदान

पिछले कुछ समय से विश्व में पर्यावरण के प्रति एक नई चेतना का विकास हुआ है। आम आदमी भी पर्यावरण की जानकारी पाने के लिए उत्सुक हैं, कहीं उस उत्सुकता ने चिन्ता का और कहीं पर आलोचना का रुप धारण कर लिया है। इस गम्भीर समस्या पर विश्व का ध्यान पहली बार तक केंन्द्रित हुआ जब स्वीडन की राजधनी स्टाकहोम में जून 1972 को प्रथम 'संयुक्त राष्ट्र सार्वभौम पर्यावरण सम्मेलन' का आयोजन हुआ, जिसमें भारत की प्रधानमंत्री इंन्दिरा गाँधी ने भी भाग लिया [22] और इसके पश्चात संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की विधिवत स्थापना हुई। उसके बाद जून 1992 में ब्राजील की राजधानी रियो डीजीनेरो में 'पृथ्वी सम्मेलन' हुआ [23]। इस प्रकार अनेक अध्ययनों और अनुभवों के फलस्वरुप पर्यावरण संबंधी प्रश्न दुनिया के विकसित और विकासशील देशों के अति चिन्तनीय विषयों की मुख्य धारा से जुड़ गया।

सरकारी संसाधनों और प्रशासनिक तन्त्र की अपनी सीमाएं होती हैं। पर्यावरण संरक्षण का कार्य–जोर जबरदस्ती से नही, लोगों को समझा बुझाकर, उनका हित–अहित बताकर आसानी से किया जा सकता है, और यह कार्य गैर–सरकारी संगठन अधिक कुशलता व सक्रियता से कर सकते हैं। सरकार ने भी, इन्हें बढ़ावा देने का प्रयास किया है। लोग पर्यावरण के प्रति जितने जागरफक होंगे, केन्द्र या राज्य सरकारें भी उसी अनुपात में सक्रिय होगी। लोगों की जागरफकता ही पर्यावरण को बचा सकती है। डेरिल के अनुसार, "गैर सरकारी और स्वैच्छिक संगठन ही पर्यावरण के आंदोलन को गतिशील और शक्तिशाली बनातें हैं।"[24] सरकारी कामकाज न तेजी से होता है और न ही इसमें गतिशीलता होती है। गैर–सरकारी संगठन स्वतंत्र चुस्त और प्रगतिशील हेाते हैं, जिन्हें पर्यावरण से सम्बन्धित सभी गतिविधियों की जानकारी होती है। अहमदाबाद की पर्यावरण संस्था 'विकसित' के कार्तिकेय सारा भाई के अनुसार, "लोगों में जागरुकता पैदा करने के लिए सरकार को गैर–सरकारी संगठनों का सहयोग लेना ही चाहिए। अगर सरकार गैर–सरकारी संगठनों से सलाह लेती है तो उसे अपनी प्रक्रिया में मदद के लिए बहुमूल्य सुझाव मिल सकते हैं [25]।" जोधपुर विश्वविघालय के सुरेन्द्र मल मोहनोत भी इस बात पर जोर देते हैं कि पर्यावरण के प्रति जागरुकता पैदा करने के लिए 'पर्यावरण विभाग' को गैर–सरकारी संगठनों, स्कूलों, कालेजों और विश्वविघालयों के सहयोग से कार्यक्रम चलाने चाहिए। [26]

सरकार पर्यावरण सम्बंधी समस्याएँ सिर्फ कागजों पर समझती है,पर्यावरण मंत्रालय अन्य सरकारी क्षेत्रों में पर्यावरण के प्रति जागरुकता पैदा करने में सफल नहीं हो पाया है। ऐसे में पर्यावरण के प्रति जन शिक्षण और सरकारी कार्यवाही के लिए व्यापक रुप से उठाने की मांग का दायित्व गैर–सरकारी संगठनों पर आ जाता है। इन संस्थाओं ने पर्यावरण के संरक्षण के लिए आवाज भी बुलन्द की है और लोगों की भागीदारी और नियंत्रण के अन्तर्गत प्राकृतिक सम्पदा के समतामूलक और स्थाई उपयोग के वैकल्पिक ढाँचे को तैयार करने में भी पहल की है। काफी सीमा तक सभ्य समाज, प्रेस व अदालत तक

जनता की पहुँच के कारण सरकार भी गैर–सरकारी संगठनों की अनदेखी करने की स्थिति में नहीं है, इसी कारण इन संस्थाओं के प्रति सरकार का व्यवहार आदर का हो जाता है।
पर्यावरण संरक्षण का यह प्रयास उन लोगों द्वारा आरम्भ किया जा रहा है जो इससे स्वयं प्रभावित होते हैं। गैर–सरकारी संगठन दूरदराज के गाँवों से लेकर शहरों में झोपड़–पट्टियों तक ये संगठन लोगों की समस्याओं से सीधे जुड़े होते हैं, इसी कारण ये पर्यावरण संरक्षण के लिए सकारात्मक प्रयास [27] तथा समाज में साझेदारी का वातावरण पैदा करने में सफल हुए हैं। ये संगठन चुनाव में भाग नहीं लेते इसलिए इन्हें गैर राजनैतिक संगठन माना जाता है। लेकिन अधिकांश संगठनों के पास समाज और विकास का एक राजनैतिक खाका है, इसलिए इनका अस्तित्व और इनकी संख्या पर्यावरण संरक्षण के आंदोलनों को एक विशिष्ट चरित्र प्रदान करती है।
कुल मिलाकर समाज की संस्थाओं ने बिगड़ते पर्यावरण को अपनी चिंता में सम्मिलित कर लिया है,[28] राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इनकी भूमिका को सराहा गया है। पर्यावरण सरंक्षण के प्रति भी सरकार का रवैया कुछ इस प्रकार का है कि जब गैर–सरकारी संगठनों का सरकार पर दबाव पड़ता है तो सरकार कानून बना देती है, इन सब कारणों से सरकारी नीतियों और कानूनों के खड़े स्वार्थों के कारण तनाव बढ़ रहा है और पर्यावरण की बुनियादी राजनीति की बहस का भी विस्तार हो रहा है। सरकार और गैर–सरकारी संगठनों के बीच संघर्ष के कारण पर्यावरण संरक्षण का भी प्रचार हो रहा है। इन संगठनों को सरकारी या अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा अनुदान की राशि पर निर्भर रहना पड़ता है। जो गैर सरकारी संगठन अच्छे हैं उन्हें सरकार के द्वारा ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से भी वित्तीय सहायता मिलती है, जहां तक अंतर्राष्ट्रीय सहायता की बात है तो इस संदर्भ में यह बात महत्वपूर्ण है कि अनुदान पाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों और सरकार के बीच आपसी समझदारी का रिश्ता कायम हो। [29] भारत में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा पर्यावरण सुरक्षा के लिए चलाए जा रहे आंदोलन संक्षेप में इस प्रकार हैं–

टेहरी बांध् विरोधी अभियानः– पर्यावरणविद सुन्दर लाल बहुगुणा के नेतृत्व में 'टेहरी बांध् विरोधी संघर्ष समिति' इस बांध् का विरोध् कर रही है। 20 अक्टूबर 1991 को आए विनाशकारी भूकम्प के बाद यह विरोध् और भी तेज हो गया। यह क्षेत्र भूकम्प प्रभावित है। इसी कारण बांध् का विरोध् हो रहा है।

शांति घाटी बचाओ आंदोलनः– 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद्' के नेतृत्व में चलाए गये शांति घाटी बचाओ अभियान को सफलता भी मिली है और भारत का एकमात्र मानसूनी जो अपार जैविक संपदा से भरा है, नष्ट होने से बच गया। यह आंदोलन नबबे के दशक के शुरू में चलाया गया था ओर केरल सरकार को अपनी 'शांति घाटी सिंचाई परियोजना' रोक देनी पड़ी।

नर्मदा आंदोलनः– बाबा आप्टे और मेघा पाटकर की अगुवाई में नर्मदा नदी पर बन रहे बांधें का विरोध् इसलिए हो रहा है कि इससे लाखों आदिवासी उजड़ जाएंगे और उनके पुनर्वास की व्यवस्था नहीं की जा रही है। पर्यावरण शास्त्रियों का कहना है कि इस बांध् से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

दून घाटी में खनन का विरोधः– दून घाटी और मंसूरी में चूने की खानों का पर्यावरणविदों ने व्यापक विरोध् किया और कहा कि इससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, जिससे जंगल और फल देने वाले वृक्ष नष्ट हो रहे हैं साथ ही जल स्रोत भी प्रदूषित हो रहे हैं। देहरादून की गैर–सरकारी संस्था 'रूरल लिटिगेशन एण्ड इनटाइटलमेंट' केन्द्र ने सर्वोच्च न्यायालय में सार्वजनिक हित की याचिका दायर की जिस पर आदेश करते हुए न्यायालय ने खनन पर रोक लगा दी। पर्यावरण पर प्रभाव को देखते हुए भारतीय सर्वोच्च न्यायालय का यह ऐतिहासिक फैसला था।

चिपको आंदोलनः– यह आंदोलन 1973 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जंगलों को काटने का ठेका देने के विरोध् में एक गांधीवादी संस्था 'दशौली ग्राम स्वराज्य मण्डल' ने शुरू किया था। चिपको आंदोलन भारत का सर्वाध्कि लोकप्रिय और चर्चित आंदोलन रहा है। [30] इसमें पर्वतीय क्षेत्रों के लोग विशेषकर महिलाएं पेड़ों से चिपक जाती थी और ठेकेदारों को पेड़ नहीं काटने देती थी।

बेथड़ी आंदोलनः– कर्नाटक में प्रस्तावित यह 'जल विद्युत योजना' पर्यावरणविदों के विरोध् के कारण रोक देनी पड़ी। इस परियोजना के बनने पर आस–पास का विशाल भू–भाग जिन पर मसालों के बगान थे डूब जाते थे।

इन्द्रावती पर बांध् का विरोधः– महाराष्ट्र में इन्द्रावती नदी पर भोपाल पतनम और इचामपल्ली बांधें का काम आदिवासियों के आंदोलन के कारण रोक देना पड़ा। उन्होंने राजनीतिज्ञों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के संयुक्त संगठन 'जगल बचाओं मानव बचाओं आंदोलन' के नेतृत्व में संघर्ष किया।
इन संगठनों को अनेक सीमाओं में रहकर कार्य करना पड़ता है। इनके पास प्रशिक्षित लोग नहीं होते, जो तकनीकी और आर्थिक पहलुओं का ठीक से विश्लेषण कर सकें। यद्यपि ये संगठन सामाजिक और राजनैतिक पहलुओं की सीमा तक अध्किांश शैक्षिणिक संस्थाओं से बेहतर विश्लेषण करते है। [31] तकनीकी विषयों में कभी–कभी विश्वविद्यालय और कुछ वैज्ञानिक व अन्य संस्थाओं के मित्र संस्थाओं की सहायता करते हैं। लेकिन दूरदराज इलाके में किसी बांध् का विरोध् करने वाली संस्था के लिए ऐसा विशेषज्ञ ढूंढ पाना मुश्किल ही होगा, जो पर्यावरण पर प्रस्तावित बांध् के कुप्रभावों का आंकन करके उनके अभियान को सफल बना सके। विभिन्न परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभावों के बारे में सही आंकड़े भी सरकारी सूत्रों से नहीं मिल पातें यह कमी पर्यावरण के प्रति सहानुभूति रखने वाले उन समर्थकों अधिकारियों और

पत्रकारों से पूरी होती हे जिनकी सरकारी क्षेत्रों में पहूंच होती है। परन्तु इनकी एक सीमा यह भी है कि इन्हें अपने प्रयासों में कानूनी समर्थन नहीं मिल पाता [32] बदलते परिवेश में पर्यावरण संबंधी विषयों के प्रति न्यायपालिका की रूचि भी निश्चित रूप से बढ़ रही है,लेकिन कहां तक सफलता मिलेगी, इसमें सन्देह है।

गैर–सरकारी संगठन कितने ही प्रगतिशील क्यों न हो, इन्हें अनेक बाधओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से अधिकांश संगठन छोटे हैं और सीमित क्षेत्र में काम करते हैं, इसके कारण इनमें लचीलापन अपने इलाके और वहां की जनता के बारे में समझ तो होती है,लेकिन इनकी गतिविधियों में अक्सर विविधता की कमी होती है, फिर स्थानीय राजनेता, नौकरशाह और अन्य प्रभावशाली लोग इनके ईमानदार प्रयासों को नाकाम करने में लगे रहते हैं। स्थानीय निहित स्वार्थों को जब लगता है कि संगठन उनके अनुसार नहीं चलेगा तो वे इनके खिलाफ आक्रामक हो जाते हैं। तब इन संगठनों को लगता है कि उनका प्रयास बेकार है। इस तरह कई बार तो वे हताश होकर किसी घोषित राजनैतिक संगठन में ही निष्क्रिय हो जाते हैं, कुछ सदस्य किसी अन्य कार्य में लग जाते है।[33] इस तरह कार्यकर्ताओ के लोप हो जाने से इस तरह के संगठन विलुप्त हो जाते हैं। कुछ संगठन अपने मध्यमवर्गीय शहरी सदस्यों की जगह वहीं के व्यक्तियों को रखते हैं, लेकिन ये व्यक्ति बाहरी स्रोतो से चन्दा नहीं जुटा सकते और ऐसे संगठनों के कार्यक्रम अक्सर स्थानीय स्रोतों के चन्दे पर नहीं चल सकते, उन्हें राज्य या केन्द्र सरकार से पर्याप्त सहायता मिलनी आवश्यक है।

कुल मिलाकर इन संस्थाओं ने बाधाओं और अंतर्निहित सीमाओं के बावजूद स्वास्थ्य, उपयुक्त–तकनीक, जल–प्रबंध् और वन–रोपण जैसे क्षेत्रों में जिस सफलता के साथ किया,उनके कारण इन क्षेत्रों के विशेषज्ञों को अपने दृष्टिकोण और समाधन पर पुर्नविचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। संस्थाओं के कामकाज की व्यापक सराहना हुई है। सरकार ने भी गैर–सरकारी संगठनों की सरकारी कार्यक्रमों में भागीदारी बढ़ाने के लिए योजना आयोग में उनके प्रतिनिधियों को अपना सलाहकार बनाया है तथा 'राष्ट्रीय पर्यावरण सलाहकार समिति' को लोगों की समस्याओं और उभरते प्रश्नों की जानकारी मिलती रहे। पर्यावरण के अन्य क्षेत्रों में भी गैर–सरकारी संगठनों की सहभागिता को प्रोत्साहित किया जा रहा है। अनेक राष्ट्रों में 'हरित दलों' का उदय हुआ है। भारत में भी 1980 से 'पर्यावरण' प्रमुख राजनीतिक दलों के चुनाव घोषणापत्रों में स्थान ले चुका है।

निष्कर्ष

आज पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यकता इस बात की है कि मानव की सोच में इस प्रकार का बदलाव आए कि व्यक्तिगत हित की बजाय सामूहिक हित को सर्वोपरि समझे। लोगों में इस प्रकार की सामूहिकता लाने का प्रयास गैस–सरकारी संगठन कर रहे हैं। विकास और पर्यावरण संरक्षण एक–दूसरे के पूरक हैं, इसलिए विकास के नाम पर पर्यावरण की हत्या करना, मानव जाति के लिए निश्चित रूप से आत्मघाती कदम होगा। पर्यावरण संरक्षण के लिए विभिन्न संगठनों ने आंदोलन का ही सहारा लिया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। पर्यावरण प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण के लिए रचनात्मक दिशा प्रदान करनी होगी, जिससे न तो पर्यावरण प्रदूषित हो और न ही समाजिक–आर्थिक विकास। इस संबंध् में कुछ सकारात्मक सुझाव इस प्रकार हैं, जिन पर पर्यावरण विशेषज्ञों,समाज सेवियों, अनुसंधनकर्त्ताओं को चिन्तन मनन की आवश्यकता है

- प्राकृतिक, मानवीय तथा संस्थान संसाधनों के मध्य संतुलन स्थापित किया जाए, तथा इस प्रकार का कार्यक्रम तैयार किया जाए,जिससे की संसाधनों का सही–सही वितरण हो सके।
- औद्योगिक विकास मार्यादित ढंग से हो,जिससे पर्यावरण को किसी प्रकार का संकट उत्पन्न न हो क्योंकि आज जिस प्रकार से औद्योगिक,ऊर्जा विकास के लिए पेड़–पौधें को काटा जा रहा है वह आज भी पर्यावरण संबंधी सबसे बड़ी समस्या है।
- परती भूमि पर फलदार, छायादार और इमारती लकड़ी वाले वृक्षों की रोपाई की जाए,जिससे जहां एक ओर बहुमूल्य लकड़ी प्राप्त होगी,वहीं दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषण भी कम होगा।
- भूमि को बंजर होने से बचाने,पर्यावरण की रक्षा तथा वनोरोपन हेतु सिंचाई की व्यवस्था में सुधार के लिए अत्यधिक मात्रा में पेड़ लगाए जाएं।
- योजना आयोग,पर्यावरण और वन विभाग,गैस–परम्परागत ऊर्जा विभाग,विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग के मध्य इस प्रकार का समन्वय किया जाए कि ये तीनों विभाग पर्यावरण की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध हो।

संक्षेप में पर्यावरण संतुलन एक मजबूत धरातल है, जिस पर पूरा विश्व स्थिर है, यदि इस धरातल को पर्यावरण प्रदूषण रूपी भूकम्प से अव्यवस्थित किया गया तो इसके गंभीर दुष्प्रिणाम होंगे। पर्यावरण विभाग को सरकार के प्रति लोगों और विशेषज्ञों की राय और प्रतिक्रिया व्यक्त करने का माध्यम बनना चाहिए। पर्यावरण और विकास से जुड़े गैर–सरकारी संगठनों से सम्पर्क करना चाहिए तथा जनशिक्षण के सुनिश्चित कार्यक्रम चलाने चाहिए। स्कूल, कालेजों और तकनीकी संस्थाओं के अधिकारियों के सहयोग से शिक्षण में हर स्तर पर पर्यावरण की एक दीर्घकालीन नीति भी तैयार की जानी चाहिए तथा गैर–सरकारी संगठनों के सहयोग से आम आदमी,प्रबंधकों राजनेताओं को शिक्षित करने का प्रयास करना चाहिए।

इस क्षेत्र में मुख्य गैर–सरकारी संगठन 'थिंक ग्लोबली एक्ट लोकली'[34] सर्वव्यापक रूप से पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए निम्न से निम्न स्तर से पर्यावरण संरक्षण का कार्य कर रहे हैं। इसी कारण ये संगठन मुख्य रूप से सामुदायिक चेतना लाने का प्रयास कर रहे हैं,सरकार और समाज के बीच 'कम्युनिकेशन गैप' को कम करके सरकार और सामान्य नागरिकों के बीच एक पुल का कार्य कर रहे हैं। ये संगठन सरकार की विभिन्न परियोजनाओं की जानकारी लोगों तक

पहुंचाते हैं। गैर–सरकारी संगठनों का प्रभावशाली ढंग से कार्य करने के लिए निम्नलिखित ढंग से कार्य करना चाहिए तभी शासन,समाज और प्रकृति के बीच सामंजस्य बढ़ाया जा सकेगा जो कि संतुलित विकास की पूर्व शर्त है:

- गैर–सरकारी संगठनों को एक उत्प्रेरक बल के रूप में कार्य करना चाहिए।
- गैर–सरकारी संगठन गांवों में स्थित हो तथा संगठन को ग्रामीणों का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।
- गैर–सरकारी संगठनों को अधिक से अधिक युवाओं से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए ताकि ग्रामीण प्रतिभाओं का शहरी क्षेत्रा की ओर पलायन न हो।
- गैर–सरकारी संगठनों को सरकार से प्रतियोगिता न करके उनसे सहयोग का रास्ता अपनाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. United Nation, Development and Environment, 1972, 7-8.
2. Gopal K. Kadekodi, "Poverty-Environment Syndrome", Financial Express, 1992, 23.
3. Elliot H. Blanstein, "Your Environment and You: Understanding the Pollution problems", New York, Oceana, 1974, 66.
4. Shekhar Singh, "People Participation in Coervation", in Shekhar Singh, (ed.), Environment Policy in India, New Delhi, IIPA, 1984, 127-143.
5. Anil Aggarwal and Sunita Narayan, Our Environment, Delhi, Gandhi Santi Pratisthan, 1988, 240-241.
6. Ibid
7. Quote in Ibid, 8
8. Ibid
9. Ibid, ***34***
10. Yojana,1994:38(8):1517.
11. Kurukshetra, March, 1994, 17.
12. Ranbir Singh, "Noise Pollution: Some legal Perspective", in RK. Sapru (ed.) Environment Management in India, New Delhi, Ashish Pub. House, 1987, 125-135.
13. Atiya Singh, the Growing Menace of Noise Pollution, The Assam Tribune, February 19, 1993.
14. See MV. Subramanyam, "43 Hours of Panic", Sunday, 1993, 18-24.
15. Harish Chandra Vyas, Population, Pollution of Environment, New Delhi, Vidhya Vihar, 1989, 10-11.
16. Ghillean T. Prance, "Deforestation: A Botanist's View"in David Angell JD. Comer & MLN. Wilkinson (eds.), Sustainable Earth: Response to the Environment Threat, London, Macmillan, 1990, 52-59.
17. Anupamp Mishra of TN. Aatrya (ed.), Environment of World, Environment Office, Gandhi Santi Pratistahan, 1984, 36.
18. Ibid
19. Anil Aggarwal & Sunita Narayan, op. cit, 52.
20. TN. Khosnoo, Environment Priorities in India and Sustainable Development, Presidential Address, 73rd Session, Indian Science Congress Association, New Delhi, 1986, 207.
21. See for details, N. S. Chandrasekharan, "Structure and Functioning of Environmental Protection Agency: A Fresh Look", Cochin University Law Review, 1984, 178-181.
22. See TN. Khoshoo, "Indira Gandhi on Environment", Dept. Of Environment, Govt. of India, 1984.
23. The Times of India, June, 1992.
24. Quoted in Anil Aggarwal & Sunita Narayan, op. cit, 235.
25. Ibid
26. Ibid
27. Bunker Roy, Voluntary Agencies and Political Parties, Mainstream,1987:26(7):7.
28. Myron Weiner, "India's New Political Institutions", Asian Survey,1987:16(9):898-901.
29. Rastriya Shahara, November, 1994.
30. Harsh Dokhal, "Chipco: Social Background of an Environment Movement", Mainstream, Vol. xxxiii, January,1991:18:15-17.
31. Bunker Roy, op. cit, 7.
32. P. Leelakrishan, "Environment and the Law", Indian Jr. of 'Public Administration, Vol. xxxv, July-September, 1989, 403.
33. Kurukshetra,1993:38(4):26.
34. Sunder Lal Bahuguna, Vandana Siva of M. M. Buch, "Environment Crisis of Sustainable Development", Dehradun, Natraj Publishers, 1992, 761.